मापदण्ड निर्धारित करना और व्यक्ति के भौतिक व आध्यात्मिक विकास में संतुलन कायम करना।

3. धर्म, भाषा, क्षेत्रीयता व जातिवाद के कारण उत्पन्न भेदों को आसेतु हिमाचल सम्पूर्ण राष्ट्र के प्रति भक्ति की गंगा में डुबोकर एकरस शक्तिशाली राष्ट्र जीवन खड़ा करना।

4. एक ऐसी राजनीतिक एवं संवैधानिक रचना को खड़ा करना जो राष्ट्रीय एकता को पुष्ट करने के साथ-साथ प्रत्येक भारतीय को राष्ट्र-निर्माण और राष्ट्र-जीवन के संचालन की प्रक्रिया में सहभागी होने का अवसर प्रदान कर सके।

5. राष्ट्र की नवीन आर्थिक-सामाजिक व राजनीतिक रचना को प्रतिबिम्बित करने वाले नागरिकों का विकास करने वाली शिक्षा-प्रणाली का आविष्कार करना।

किन्तु स्वाधीनता संघर्ष काल के इन प्रेरणा सूत्रों के प्रकाश में जब हम स्वाधीन भारत के आज के चित्र पर दृष्टि डालते हैं तो क्या दिखाई देता है? क्या हम उपरोक्त राष्ट्रीय लक्ष्यों की पूर्ति की दिशा में एक पग भी आगे बढ़े हैं? राष्ट्र जीवन के आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, शैक्षणिक आदि किसी भी क्षेत्र में क्या हम अपने राष्ट्रीय आदर्शों के अनुरूप कोई भी मौलिक रचना खड़ी कर पाये हैं? विगत 30 वर्षों में जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में प्रगति के नाम पर जो कुछ हुआ है उसे पश्चिमी अर्थरचना के अन्धानुकरण के अलावा और क्या कहा जा सकता है? प्रत्यक्ष कृति के क्षेत्र में स्वाधीन भारत द्वारा स्वाधीनता आंदोलन की मूल प्रेरणाओं से इस संबंध विच्छेद का कारण क्या है? क्या स्वाधीनता आंदोलन की ये प्रेरणाऐं ही गलत थीं अथवा स्वाधीन भारत उनके प्रति शाब्दिक निष्ठा का बार-बार उद्घोष करते हुए गलत मार्ग पर भटक गया है?

युगानुकूल समाज रचना के आविष्कार का कार्य केवल बौद्धिक व्यायाम के द्वारा पूरा होना संभव नहीं है। बनी बनायी आयातित विचारधाराओं के दायरे में बहस के द्वारा कभी भी नवस्वतंत्र राष्ट्र का नवनिर्माण नहीं हुआ करता। उसके लिए व्यक्तिगत, पारिवारिक एवं सामूहिक आचरण के क्षेत्र में लंबे एवं बहुविध प्रयोगों की प्रक्रिया से गुजरना अनिवार्य होता है। प्रत्यक्ष आचरण की प्रयोगशाला की भट्टी में तपकर ही नवनिर्माण का साँचा तैयार हुआ करता है। इसीलिए हम देखते हैं कि ब्रिटिश साम्राज्यवाद के साथ भारत की लड़ाई के दौरान दो धाराऐं साथ-साथ बहती रही हैं। एक राजनीतिक आंदोलन की तो दूसरी रचनात्मक प्रयोगों की। बंगभंग आंदोलन के समय से ही राष्ट्रीय शिक्षा के क्षेत्र में अनेक प्रयोग प्रारंभ हो गये थे। गाँधी जी ने तो केन्द्रीय जीवनदर्शन की धुरी के चारों ओर आहार-विहार से लेकर आर्थिक-सामाजिक रचना तक सर्वांङ्गीण राष्ट्रीय पुनर्निर्माण की दिशा में अनेक प्रयोग प्रारंभ किये थे।

वस्तुत: गाँधी जी की दृष्टि में इन रचनात्मक प्रयोगों का स्थान राजनीतिक संघर्ष से कम महत्व का नहीं था। राजसत्ता उनके लिए राष्ट्र निर्माण के अनेक साधनों में से एक साधन थी -- सर्वस्व नहीं। अत: राजनीति उनकी गतिविधियों का केन्द्र बिन्दु न होकर एक पूरक अंग मात्र थी।

सत्ता केन्द्रित राजनीति का उदय

स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात् सत्ता को ही राष्ट्र निर्माण का एकमात्र साधन मान लिया गया। इसीलिए सत्ताभिमुखी राजनीति संपूर्ण सार्वजनिक जीवन पर छा गई। परिणामस्वरूप गत 30 वर्ष में सामाजिक, शैक्षणिक या राष्ट्रीय जीवन के अन्य किसी भी क्षेत्र में नेतृत्व का विकास न हो पाया। सत्ता के आंगन में प्रवेश करना ही प्रत्येक का लक्ष्य बन गया। संसद और विधान सभाओं की 5000 सीटों के लिए छीनाझपटी और जोड़तोड़ का नाम ही